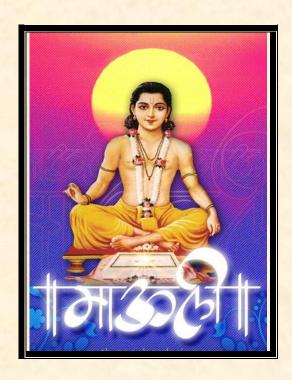
॥ श्रीहरि ॥ ॥ श्री ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका ॥ ॥ अध्याय सहावा ॥

< (2) > < (2) > < (2) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3)



() > 4 () >

हेचि आम्हां करणे काम । बीज वाढवावे नाम ॥

संतचरणरज बाळकृष्ण प्रकाश कदम जय हरि सांस्कृतीक प्रतिष्ठान, सोलापूर

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥ ॥ अध्याय सहावा ॥ ॥ ध्यानयोगः॥

<</p>

</p

मग रायातें म्हणे संजयो । तोचि अभिप्रावो अवधारिजो । कृष्ण सांगती आतां जो । योगरूप ॥ १ ॥ सहजें ब्रह्मरसाचें पारणें । केलें अर्जुनालागीं नारायणें । कीं तेचि अवसरीं पाहुणे । पातलों आम्ही ॥ २ ॥ कैसी दैवाची आगळिक नेणिजे । जैसें तान्हेलिया तोय सेविजे । कीं तेंचि चवी करूनि पाहिजे। तंव अमृत आहे॥ ३॥ तैसें आम्हां तुम्हां जाहलें। जे आडमुठीं तत्त्व फावलें। तंव धृतराष्ट्रं म्हणितलें । हें न पुसों तूतें ॥ ४ ॥ तया संजया येणें बोलें । रायाचें हृदय चोजवलें । जें अवसरीं आहे घेतलें । कुमारांचिया ॥ ५ ॥ हें जाणोनि मनीं हांसिला । म्हणे म्हातारा मोहें नाशिला । ए-हवीं बोलु तरी भला जाहला । अवसरीं इये ॥ ६ ॥ परि तें तैसें कैसेनि होईल । जात्यंधु कैसें पाहेल । तेवींचि ये रुसें घेईल । म्हणौनि बिहे ॥ ७ ॥ परि आपण चित्तीं आपुला । निकियापरी संतोषला । जे तो संवादु फावला । कृष्णार्जुनांचा ॥ ८ ॥ तेणें आनंदाचेनि धालेपणें । साभिप्राय अंतःकरणें । आतां आदरेंसीं बोलणें । घडेल तया ॥ ९ ॥ तो गीतेमाजी षष्ठींचा । प्रसंगु असे आयणीचा । जैसा क्षीरार्णवीं अमृताचा । निवाडु जाहला ॥ १० ॥

तैसें गीतार्थाचें सार । जें विवेकसिंधूचें पार । नाना योगविभवभांडार । उघडलें कां ॥ ११ ॥ जें आदिप्रकृतीचें विसवणें । जें शब्दब्रह्मासि न बोलणें । जेथूनि गीतावल्लीचें ठाणें । प्ररोहो पावे ॥ १२ ॥ तो अध्यावो सहावा । वरि साहित्याचिया बरवा । सांगिजैल म्हणौनि परिसावा । चित्त देउनी ॥ १३ ॥ माझा मराठाचि बोलु कौतुकें । परि अमृतातेंही पैजां जिंके । ऐसीं अक्षरें रिसकें । मेळवीन ॥ १४ ॥ जिये कोंवळिकेचेनि पाडें । दिसती नादींचें रंग थोडे । वेधें परिमळाचें बीक मोडे । जयाचेनि ॥ १५ ॥ ऐका रसाळपणाचिया लोभा । कीं श्रवणींचि होति जिभा । बोले इंद्रियां लागे कळंभा । एकमेकां ॥ १६ ॥ सहजें शब्दु तरी विषो श्रवणाचा । परि रसना म्हणे हा रसु आमुचा । घ्राणासि भावो जाय परिमळाचा । हा तोचि होईल ॥१७॥ नवल बोलतीये रेखेची वाहणी । देखतां डोळयांही पुरों लागे धणी । ते म्हणती उघडली खाणी । रूपाची हे ॥ १८ ॥ जेथ संपूर्ण पद उभारे । तेथ मनचि धांवे बाहिरें । बोलु भुजाही आविष्करें । आलिंगावया ॥ १९ ॥ ऐशीं इंद्रियें आपुलालिया भावीं । झोंबती परि तो सरिसेपणेंचि बुझावी । जैसा एकला जग चेववी । सहस्त्रकरु ॥ २० ॥ तैसें शब्दाचें व्यापकपण । देखिजे असाधारण । पाहातयां भावज्ञां फावती गुण । चिंतामणीचे ॥ २१ ॥ हें असोतु या बोलांचीं ताटें भलीं । वरी कैवल्यरसें वोगरिलीं ।

ही प्रतिपत्ति मियां केली । निष्कामासी ॥ २२ ॥ आतां आत्मप्रभा नीच नवी । तेचि करूनि ठाणदिवी । जो इंद्रियांतें चोरूनि जेवी । तयासीचि फावे ॥ २३ ॥ येथ श्रवणाचेनि पांगें- । वीण श्रोतयां होआवें लागे । हे मनाचेनि निजांगें। भोगिजे गा॥ २४॥ आहाच बोलाची वालीफ फेडिजे। आणि ब्रह्माचियाचि आंगा घडिजे । मग सुखेंसी सुरवाडिजे । सुखाचि माजीं ॥ २५ ॥ ऐसें हळुवारपण जरी येईल । तरीच हें उपेगा जाईल । ए-हवीं आघवी गोठी होईल । मुकिया बहिरयाची ॥ २६ ॥ परी तें असो आतां आघवें । नलगे श्रोतयांतें कडसावें । जे अधिकारिये एथ स्वभावें । निष्कामकामु ॥ २७ ॥ जिहीं आत्मबोधाचिया आवडी । केली स्वर्गसंसाराची कुरोंडी । तेवांचूनि एथींची गोडी । नेणती आणिक ॥ २८ ॥ जैसा वायसीं चंद्र नोळिखजे । तैसा प्राकृतीं हा ग्रंथु नेणिजे । आणि तो हिमांशुचि जेविं खाजें । चकोराचें ॥ २९ ॥ तैसा सज्ञानासी तरी हा ठावो । आणि अज्ञानासी आन गांवो । म्हणौनि बोलावया विषय पहा हो । विशेषु नाहीं ॥ ३० ॥ परी अनुवादलों मी प्रसंगें । तें सज्जनीं उपसाहावें लागे । आतां सांगेन काय श्रीरंगें । निरोपिलें जें ॥ ३१ ॥ तें बुद्धीही आकळितां सांकडें । म्हणौनि बोलीं विपायें सांपडे । परी श्रीनिवृत्तिकृपादीप उजियेडें । देखैन मी ॥ ३२ ॥ जें दिठीही न पविजे । तें दिठीविण देखिजे । जरी अतींद्रिय लाहिजे । ज्ञानबळ ॥ ३३ ॥

श्रीभगवानुवाच । अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः । स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ १॥

आइकें योगी आणि संन्यासी जनीं । हे एकचि सिनानें झणीं मानीं । ए-हवीं विचारिजती जंव दोन्ही । तंव एकचि ते ॥ ३९ ॥ सांडिजे दुजया नामाचा आभासु । तरी योगु तोचि संन्यासु । पाहतां ब्रह्मीं नाहीं अवकाशु । दोहींमाजीं ॥ ४० ॥ जैसें नामाचेनि अनारिसेपणें । एका पुरुषातें बोलावणें । कां दोहींमार्गीं जाणें । एकाचि ठाया ॥ ४१ ॥ नातरी एकचि उदक सहजें । परि सिनाना घटीं भरिजे । तैसें भिन्नत्व जाणिजे । योगसंन्यासांचें ॥ ४२ ॥ आइकें सकळ संमतें जगीं । अर्जुना गा तोचि योगी ।

जो कर्में करूनि रागी । नोहेचि फळीं ॥ ४३ ॥ जैसी मही हे उद्भिजें । जनी अहंबुद्धीवीण सहजें । आणि तेथिंचीं तियें बीजें । अपेक्षीना ॥ ४४ ॥ तैसा अन्वयाचेनि आधारें। जातीचेनि अनुकारें। जें जेणें अवसरें । करणें पावे ॥ ४५ ॥ तें तैसेंचि उचित करी । परी साटोपु नोहे शरीरीं । आणि बुद्धीही करोनि फळवेरी । जायेचिना ॥ ४६ ॥ ऐसा तोचि संन्यासी । पार्था गा परियेसीं । तोचि भरंवसेनिसीं । योगीश्वरु ॥ ४७ ॥ वांचूनि उचित कर्म प्रासंगिक । तयातें म्हणे हे सांडावें बद्धक । तरी टांकोटांकीं आणिक । मांडीचि तो ॥ ४८ ॥ जैसा क्षाळूनियां लेपु एकु । सर्वेचि लाविजे आणिकु । तैसेनि आग्रहाचा पाइकु । विचंबे वायां ॥ ४९ ॥ गृहस्थाश्रमाचें वोझें । कपाळीं आधींचि आहे सहजें । कीं तेंचि संन्याससवा ठेविजे । सरिसें पुढती ॥ ५० ॥ म्हणौनि अग्निसेवा न सांडितां । कर्माची रेखा नोलांडितां । आहे योगसुख स्वभावता । आपणपांचि ॥ ५१ ॥

यं संन्यासिमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव । न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २॥ ऐकें संन्यासी तोचि योगी । ऐसी एकवाक्यतेची जगीं । गुढी उभविली अनेगीं । शास्त्रांतरीं ॥ ५२ ॥ जेथ संन्यासिला संकल्पु तुटे । तेथिचि योगाचें सार भेटे । ऐसें हें अनुभवाचेनि धटें। साचें जया ॥ ५३ ॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते । योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३॥

आतां योगाचळाचा निमथा । जरी ठाकावा आथि पार्था । तरी सोपाना या कर्मपथा । चुका झणी ॥ ५४ ॥ येणें यमनियमांचेनि तळवटें । रिगे आसनाचिये पाउलवाटें । येई प्राणायामाचेनि आडकंठें । वरौता गा ॥ ५५ ॥ मग प्रत्याहाराचा अधाडा । जो बुद्धीचियाही पायां निसरडा । जेथ हटिये सांडिती होडा । कडेलग ॥ ५६ ॥ तरी अभ्यासाचेनि बळें । प्रत्याहारीं निराळें । नखीं लागेल ढाळें ढाळें । वैराग्याची ॥ ५७ ॥ ऐसा पवनाचेनि पाठारें । येतां धारणेचेनि पैसारें । क्रमी ध्यानाचें चवरें । सांपडे तंव ॥ ५८ ॥ मग तया मार्गाची धांव । पुरेल प्रवृत्तीची हांव । जेथ साध्यसाधना खेंव । समरसें होय ॥ ५९ ॥ जेथ पुढील पैसु पारुखे । मागील स्मरावें तें ठाके । ऐसिये सरिसीये भूमिके । समाधि राहे ॥ ६० ॥ येणें उपायें योगारूढु । जो निरवधि जाहला प्रौढु । तयाचिया चिन्हांचा निवाडु । सांगैन आइकें ॥ ६१ ॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते । सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४॥ तरी जयाचिया इंद्रियांचिया घरा । नाहीं विषयांचिया येरझारा
। जो आत्मबोधाचिया वोवरां । पहुडला असे ॥ ६२ ॥
जयाचें सुखदु:खाचेनि आंगें । झगटलें मानस चेवो नेघे ।
विषय पासींही आिलयां से न रिगे । हें काय म्हणौनि ॥ ६३ ॥
इंद्रियें कर्माच्या ठायीं । वाढीनलीं पिर कहीं ।
फळहेतूची चाड नाहीं । अंत:करणीं ॥ ६४ ॥
असतेनि देहें एतुला । जो चेतुचि दिसे निदेला ।
तोचि योगारूढु भला । वोळखें तूं ॥ ६५ ॥
तेथ अर्जुन म्हणे अनंता । हें मज विस्मो बहु आइकतां ।
सांगे तया ऐसी योग्यता । कवणें दीजे ॥ ६६ ॥

< \$\rangle > < \$\r

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् । आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५॥

तंव हांसोनि श्रीकृष्ण म्हणे । तुझें नवल ना हें बोलणें । कवणासि काय दिजेल कवणें । अद्वैतीं इये ॥ ६७ ॥ पैं व्यामोहाचिये शेजे । बळिया अविद्या निद्रितु होइजे । ते वेळी दुःस्वप्न हा भोगिजे । जन्ममृत्यूंचा ॥ ६८ ॥ पाठीं अवसांत ये चेवो । तैं तें अवधेंचि होय वावो । ऐसा उपजे नित्य सद्भावो । तोहि आपणपांचि ॥ ६९ ॥ म्हणौनि आपणचि आपणयां । घातु कीजतु असे धनंजया । चित्त देऊनि नाथिलिया । देहाभिमाना ॥ ७० ॥

> बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः । अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६॥

हा विचारूनि अहंकारु सांडिजे। मग असतीचि वस्तु होईजे । तरी आपली स्वस्ति सहजें । आपण केली ॥ ७१ ॥ ए-हवीं कोशकीटकाचिया परी । तो आपणया आपण वैरी । जो आत्मबुद्धि शरीरीं । चारुस्थळीं ॥ ७२ ॥ कैसे प्राप्तीचिये वेळे । निदैवा अंधळेपणाचे डोहळे । कीं असते आपुले डोळे । आपण झांकी ॥ ७३ ॥ कां कवण एकु भ्रमलेपणें। मी तो नव्हे गा चोरलों म्हणे। ऐसा नाथिला छंदु अंतःकरणें । घेऊनि ठाके ॥ ७४ ॥ ए-हवीं होय तें तोचि आहे । परि काई कीजे बुद्धि तैशी नोहे । देखा स्वप्नींचेनि घायें । कीं मरे साचें ॥ ७५ ॥ जैशी ते शुकाचेनि आंगभारें । नळिका भोविन्नली एरी मोहरें । तेणें उडावें परी न पुरे । मनशंका ॥ ७६ ॥ वायांचि मान पिळी । अटुवें हियें आंवळी । टिटांतु नळी । धरूनि ठाके ॥ ७७ ॥ म्हणे बांधला मी फुडा । ऐसिया भावनेचिया पडे खोडां । कीं मोकळिया पायांचा चवडा । गोंवी अधिकें ॥ ७८ ॥ ऐसा काजेंवीण आंतुडला । तो सांग पां काय आणिकें बांधिला । मग न सोडीच ज-हीं नेला । तोडूनि अर्धा ॥ ७९ ॥ म्हणौनि आपणयां आपणचि रिपु । जेणें वाढविला हा संकल्पु । येर स्वयंबुद्धी म्हणे बापु । जो नाथिलें नेघे ॥ ८० ॥

<</p>

<</p>

<

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः । शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७॥

तया स्वांतः करणजिता । सकळकामोपशांता । परमात्मा परौता । दुरी नाहीं ॥ ८१ ॥ जैसा किडाळाचा दोषु जाये । तरी पंधरें तेंचि होये । तैसें जीवा ब्रह्मत्व आहे । संकल्पलोपीं ॥ ८२ ॥ हा घटाकारु जैसा । निमालिया तया अवकाशा । नलगे मिळों जाणें आकाशा । आना ठाया ॥ ८३ ॥ तैसा देहाहंकारु नाथिला । हा समूळ जयाचा नाशिला । तोचि परमात्मा संचला । आधींचि आहे ॥ ८४ ॥ आतां शीतोष्णाचिया वाहणी । तेथ सुखदुःखाची कडसणीं । इयें न समाती कांहीं बोलणीं । मानापमानांचीं ॥ ८५ ॥ जे जिये वाटा सूर्य जाये । तेउतें तेजाचें विश्व होये । तैसें तया पावे तें आहे । तोचि म्हणौनी ॥ ८६ ॥ देखें मेघौनि सुटती धारा । तिया न रुपती जैसिया सागरा । तैशीं शुभाशुभें योगीश्वरा । नव्हती आनें ॥ ८७ ॥

ज्यानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः । युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ८॥

जो हा विज्ञानात्मकु भावो । तया विविरतां जाहला वावो । मग लागला जंव पाहों । तंव ज्ञान तें तोचि ॥ ८८ ॥ आतां व्यापकु कीं एकदेशी । हे ऊहापोही जे ऐसी । ते करावी ठेली आपैशी । दुजेनवीण ॥ ८९ ॥ ऐसा शरीरीचि परी कौतुकें । परब्रह्माचेनि पाडें तुकें । जेणें जिंतलीं एकें । इंद्रियें गा ॥ ९० ॥ तो जितेंद्रियु सहजें । तोचि योगयुक्तु म्हणिजे । जेणे सानें थोर नेणिजे । कवणें काळीं ॥ ९१ ॥ देखें सोनयाचें निखळ । मेरुयेसणें ढिसाळ । आणि मातियेचें डिखळ । सिरसेंचि मानी ॥ ९२ ॥ पाहतां पृथ्वीचें मोल थोडें । ऐसें अनर्घ्य रत्न चोखडें । देखें दगडाचेनि पाडें । निचाडु ऐसा ॥ ९३ ॥

सुहन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु । साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९॥

तेथ सुहद आणि शत्रु । कां उदासु आणि मित्रु । हा भावभेदु विचित्रु । कल्पूं कैंचा ॥ ९४ ॥ तया बंधु कोण काह्याचा । द्वेषिया कवणु तयाचा । मीचि विश्व ऐसा जयाचा । बोधु जाहला ॥ ९५ ॥ मग तयाचिये दिठी । अधमोत्तम असे किरीटी । काय परिसाचिये कसवटी । वानिया कीजे ॥ ९६ ॥ ते जैशी निर्वाण वर्णुचि करी । तैशी जयाची बुद्धी चराचरीं । होय साम्याची उजरी । निरंतर ॥ ९७ ॥ जे ते विश्वालंकाराचें विसुरे । जरी आहाती आनानें आकारें । तरी घडले एकचि भांगारें । परब्रह्में ॥ ९८ ॥ ऐसें जाणणें जें बरवें । तें फावलें तया आघवें । म्हणौनि आहाचवाहाच न झकवे । येणें आकारचित्रें ॥ ९९ ॥ घापे पटामाजि दृष्टी । दिसे तंतूंची सैंघ सृष्टी । परी तो एकवांचूनि गोठी । दुजी नाहीं ॥ १०० ॥

ऐसेनि प्रतीती हें गवसे । ऐसा अनुभव जयातें असे । तोचि समबुद्धि हे अनारिसें । नव्हे जाणें ॥ १०१ ॥ जयाचें नांव तीर्थरावो । दर्शनें प्रशस्तीसि ठावो । जयाचेनि संगें ब्रह्मभावो । भ्रांतासही ॥ १०२ ॥ जयाचेनि बोलें धर्मु जिये । दिठी महासिद्धितें विये । देखैं स्वर्गसुखादि इयें । खेळु जयाचा ॥ १०३ ॥ विपायें जरी आठवला चित्ता । तरी दे आपुली योग्यता । हें असो तयातें प्रशंसितां । लाभु आथि ॥ १०४ ॥

<</p>

<</p>

<

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहिस स्थितः । एकाकी यतिचत्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १०॥

पुढती अस्तवेना ऐसें । जया पाहलें अद्वैतदिवसें ।

मग आपणपांचि आपणु असे । अखंडित ॥ १०५ ॥
ऐसिया दृष्टी जो विवेकी । पार्था तो एकाकी ।

सहजें अपरिग्रही जो तिहीं लोकीं । तोचि म्हणौनि ॥ १०६ ॥
ऐसियें असाधारणें । निष्पन्नाचीं लक्षणें ।

आपुलेनि बहुवसपणें । श्रीकृष्ण बोले ॥ १०७ ॥

जो ज्ञानियांचा बापु । देखणेयांचे दिठीचा दीपु ।

जया दादुलयाचा संकल्पु । विश्व रची ॥ १०८ ॥

प्रणवाचिये पेठे । जाहलें शब्दब्रह्म माजिठे ।

तें जयाचिया यशा धाकुटें । वेढूं न पुरे ॥ १०९ ॥

जयाचेनि आंगिकें तेजें । आवो रविशशीचिये विणजे ।

म्हणौनि जग हें वेशजे- । वीण असे तया ॥ ११० ॥

हां गा नामचि एक जयाचें । पाहतां गगनही दिसे टांचें । गुण एकैक काय तयाचे । आकळशील तूं ॥ १११ ॥ म्हणौनि असो हें वानणें। सांगों नेणों कवणाचीं लक्षणें। दावावीं मिषें येणें । कां बोलिलों तें ॥ ११२ ॥ ऐकं द्वैताचा ठावोचि फेडी । ते ब्रह्मविद्या कीजेल उघडी । तरी अर्जुना पढिये हे गोडी । नासेल हन ॥ ११३ ॥ म्हणौनि तें तैसे बोलणें । नव्हे सपातळ आड लावणें । केलें मनचि वेगळवाणें । भोगावया ॥ ११४ ॥ जया सोऽहंभाव अटकु । मोक्षसुखालागोनि रंकु । तयाचिये दिठीचा झणें कळंकु । लागेल तुझिया प्रेमा ॥ १५ ॥ विपाये अहंभावो ययाचा जाईल । मी तेंचि हा जरी होईल । तरी मग काय कीजेल । एकलेया ॥ ११६ ॥ दिठीची पाहतां निविजें । कां तोंड भरोनि बोलिजे । नातरी दाटूनि खेंव दीजे । ऐसें कवण आहे ॥ ११७ ॥ आपुलिया मना बरवी । असमाई गोठी जीवीं । ते कवणेंसि चावळावी । जरी ऐक्य जाहलें ॥ ११८ ॥ इया काकुळती जनार्दनें । अन्योपदेशाचेनि हाताशनें । बोलामाजि मन मनें । आलिंगूं सरलें ॥ ११९ ॥ हें परिसतां जरी कानडें । तरी जाण पां पार्थ उघडें । कृष्णसुखाचेंचि रूपडें । वोतलें गा ॥ १२० ॥ हें असो वयसेचिये शेवटीं । जैसें एकचि विये वांझोटी । मग ते मोहाची त्रिपुटी । नाचों लागे ॥ १२१ ॥ तैसें जाहलें श्रीअनंता । ऐसें तरी मी न म्हणतां ।

जरी तयाचा न देखतां । अतिशयो एथ ॥ १२२ ॥ पाहा पां नवल कैसें चोज । कें उपदेशु केउतें झुंज । परी पुढें वालभाचें भोज । नाचत असे ॥ १२३ ॥ आवडी आणि लाजवी । व्यसन आणि शिणवी । पिसें आणि न भुलवी । तरी तेंचि काई ॥ १२४ ॥ म्हणौनि भावार्थु तो ऐसा । अर्जुन मैत्रियेचा कुवासा । कीं सुखें श्रृंगारिलया मानसा । दर्पणु तो ॥ १२५ ॥ यापरी बाप पुण्यपवित्र । जगीं भक्तिबीजासि सुक्षेत्र । तो श्रीकृष्णकृपे पात्र । याचिलागीं ॥ १२६ ॥ हो कां आत्मनिवेदनातळींची । जे पीठिका होय सख्याची । पार्थ् अधिष्ठात्री तेथिंची । मातृका गा ॥ १२७ ॥ पासींचि गोसावी न वर्णिजे । मग पाइकाचा गुण घेईजे । ऐसा अर्जुनु तो सहजें । पढिये हरी ॥ १२८ ॥ पाहां पां अनुरागें भजें । जे प्रियोत्तमें मानिजे । ते पतीहृनि काय न वानिजे । पतिव्रता ॥ १२९ ॥ तैसा अर्जुनचि विशेषें स्तवावा । ऐसें आवडलें मज जीवा । जे तो त्रिभुवनींचिया दैवां । एकायतनु जाहला ॥ १३० ॥ जयाचिया आवडीचेनि पांगें । अमूर्तुही मूर्ती आवगें । पूर्णाहि परी लागे । अवस्था जयाची ॥ १३१ ॥ तंव श्रोते म्हणती दैव । कैसी बोलाची हवाव । काय नादातें हन बरव । जिणोनि आली ॥ १३२ ॥ हां हो नवल नोहे देशी । मर्हाटी बोलिजे तरी ऐशी । वाणें उमटताहे आकाशीं । साहित्य रंगाचे ॥ १३३ ॥

<</p>

<</p>

</p

कैसें उन्मेखचांदिणें तार । आणि भावार्थु पडे गार । हेचि श्लोकार्थ कुमुदिनी फार । साविया होती ॥ १३४ ॥ चाडचि निचाडां करी । ऐसी मनोरथीं ये थोरी । तेणें विवळले अंतरीं । तेथ डोलु आला ॥ १३५ ॥ तें निवृत्तिदासें जाणितलें । मग अवधान द्या म्हणितलें । नवल पांडवकुळीं पाहलें । कृष्णदिवसें ॥ १३६ ॥ देवकीया उदरीं वाहिला । यशोदा सायासें पाळिला । कीं शेखीं उपेगा गेला । पांडवांसी ॥ १३७ ॥ म्हणौनि बहुदिवस वोळगावा । कां अवसरु पाहोनि विनवावा । हाही सोसु तया सदैवा । पडेचिना ॥ १३८ ॥ हें असो कथा सांगें वेगीं। मग अर्जुन म्हणे सलगी। देवा इयें संतचिन्हें आंगीं। न ठकती माझ्या॥ १३९॥ ए-हवीं या लक्षणांचिया निजसारा । मी अपाडें कीर अपुरा । परि तुमचेनि बोलें अवधारा । थोरावें जरी ॥ १४० ॥ जी तुम्ही चित्त देयाल । तरी ब्रह्म मियां होईजेल । काय जहालें अभ्यासिजेल । सांगाल जें ॥ १४१ ॥ हां हो नेणों कवणाची काहाणी । आइकोनि श्लाधिजत असों अंतःकरणीं । ऐसी जहालेपणाची शिरयाणी । कायसी देवा ॥४२॥ हें आंगें म्यां होईजो का । येतुलें गोसावी आपुलेपणें कीजो कां । तंव हांसोनि श्रीकृष्ण हो कां । करूं म्हणती ॥ १४३ ॥ देखा संतोषु एक न जोडे । तंवचि सुखाचें सैंघ सांकडें । मग जोडलिया कवणीकडे । अपुरें असे ॥ १४४ ॥ तैसा सर्वेश्वरु बळिया सेवकें । म्हणौनि ब्रह्मही होय तो कौतुकें

<</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>

। परि कैसा भारें आतला पिकें । दैवाचेनि ॥ १४५ ॥ जो जन्मसहस्रांचियासाठीं । इंद्रादिकांही महागु भेटी । तो आधीन केतुला किरीटी । जे बोलुही न साहे ॥ १४६ ॥ मग ऐका जें पांडवें । म्हणितलें म्यां ब्रह्म होआवें । तें अशेषही देवें । अवधारिलें ॥ १४७ ॥ तथ ऐसेंचि एक विचारिलें। जे या ब्रह्मत्वाचे डोहळे जाहले। परि उदरा वैराग्य आहे आलें । बुद्धीचिया ॥ १४८ ॥ ए-हवीं दिवस तरी अपुरे । परी वैराग्यवसंताचेनि भरें । जे सोऽहंभाव महुरे । मोडोनि आला ॥ १४९ ॥ म्हणौनि प्राप्तिफळीं फळतां । यासि वेळु न लगेल आतां । होय विरक्तु ऐसा अनंता । भरंवसा जाहला ॥ १५० ॥ म्हणे जें जें हा अधिष्ठील । तें आरंभींच यया फळेल । म्हणौनि सांगितला न वचेल । अभ्यासु वायां ॥ १५१ ॥ ऐसें विवरोनियां श्रीहरी । म्हणितलें तिये अवसरीं । अर्जुना हा अवधारीं । पंथराजु ॥ १५२ ॥ तेथ प्रवृत्तितरूच्या बुडीं । दिसती निवृत्तिफळाचिया कोडी । जिये मार्गींचा कापडी । महेशु आझुनी ॥ १५३ ॥ पैल योगवृंदे वहिलीं । आडवीं आकाशीं निघालीं । कीं तेथ अनुभवाच्या पाउलीं । धोरणु पडिला ॥ १५४ ॥ तिहीं आत्मबोधाचेनि उजुकारें । धांव घेतली एकसरें । कीं येर सकळ मार्ग निदसुरे । सांड्रनियां ॥ १५५ ॥ पाठीं महर्षी येणें आले । साधकांचे सिद्ध जाहाले । आत्मविद थोरावले । येणेंचि पंथें ॥ १५६ ॥

< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>< (*)>> (*)>

हा मार्गु जैं देखिजे । तैं तहान भूक विसरिजे ।
रात्रिदिवसु नेणिजे । वाटे इये ॥ १५७ ॥
चालतां पाऊल जेथ पडे । तेथ अपवर्गाची खाणी उघडे ।
आव्हांटलिया तरी जोडे । स्वर्गसुख ॥ १५८ ॥
निगिजे पूर्वींलिया मोहरा । कीं येइजे पश्चिमेचिया घरा ।
निश्चळपणें धनुर्धरा । चालणें एथिंचें ॥ १५९ ॥
येणें मार्गें जया ठाया जाइजे । तो गांवो आपणिच होईजे ।
हें सांगों काय सहजें । जाणसी तूं ॥ १६० ॥
तेथ पार्थें म्हणितलें देवा । तरी तेंचि मग केव्हां ।
कां आर्तिसमुद्रौनि न काढावा । बुडतु जी मी ॥ १६१ ॥
तंव श्रीकृष्ण म्हणती ऐसें । हें उत्सृंखळ बोलणें कायसें ।
आम्हीं सांगतसों आपैसें । विर पुशिलें तुवां ॥ १६२ ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः । नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११॥

तरी विशेषें आतां बोलिजेल । परि तें अनुभवें उपेगा जाईल ।
म्हणौनि तैसें एक लागेल । स्थान पाहावें ॥ १६३ ॥
जेथ अराणुकेचेनि कोडें । बैसलिया उठों नावडे ।
वैराग्यासी दुणीव चढे । देखिलिया जें ॥ १६४ ॥
जो संतीं वसविला ठावो । संतोषासि सावावो ।
मना होय उत्सावो । धैर्याचा ॥ १६५ ॥
अभ्यासुचि आपणयातें करी । हृदयातें अनुभवु वरी ।
ऐसी रम्यपणाची थोरी । अखंड जेथ ॥ १६६ ॥

जया आड जातां पार्था । तपश्चर्या मनोरथा । पाखांडियाही आस्था । समूळ होय ॥ १६७ ॥ स्वभावें वाटे येतां । जरी वरपडा जाहला अवचितां । तरी सकामुही परि माघौता । निघों विसरे ॥ १६८ ॥ ऐसेनि न राहतयातें राहावी । भ्रमतयातें बैसवी । थापटूनि चेववी । विरक्तीतें ॥ १६९ ॥ हें राज्य वर सांडिजे । मग निवांता एथेंचि असिजे । ऐसें श्रृंगारियांहि उपजे । देखतखेंवो ॥ १७० ॥ जें येणें मानें बरवंट । आणि तैसेंचि अतिचोखट । जेथ अधिष्ठान प्रगट । डोळां दिसे ॥ १७१ ॥ आणिकही एक पहावें । जें साधकीं वसतें होआवें । आणि जनाचेनि पायरवें । रुळेचिना ॥ १७२ ॥ जेथ अमृताचेनि पाडें। मुळाहीसकट गोडें। जोडती दाटें झाडें । सदा फळतीं ॥ १७३ ॥ पाउला पाउला उदकें । वर्षाकाळेंही अतिचोखें । निर्झरें का विशेखें । सुलभें जेथ ॥ १७४ ॥ हा आतपुही आळुमाळु । जाणिजे तरी शीतळु । पवनु अति निश्चळु । मंदु झुळके ॥ १७५ ॥ बहुत करूनि निःशब्द । दाट न रिगे श्वापद । शुक हन षट्पद । तेउतें नाहीं ॥ १७६ ॥ पाणिलगें हंसें । दोनी चारी सारसें । कवणे एके वेळे बैसे । तरी कोकिळही हो ॥ १७७ ॥ निरंतर नाहीं । तरी आलीं गेलीं कांहीं ।

<</p>

<</p>
<</p>
<</p>
<</p>
<</p>
<</p>

</

होतु कां मयूरेंही । आम्ही ना न म्हणों ॥ १७८ ॥ परि आवश्यक पांडवा । ऐसा ठावो जोडावा । तेथ निगृढ मठ होआवा । कां शिवालय ॥ १७९ ॥ दोहींमाजीं आवडे तें । जें मानलें होय चित्तें । बहुतकरूनि एकांते । बैसिजे गा ॥ १८० ॥ म्हणौनि तैसें तें जाणावें । मन राहतें पाहावें । राहील तेथ रचावें । आसन ऐसें ॥ १८१ ॥ वरी चोखट मृगसेवडी । माजीं धूतवस्त्राची घडी । तळवटीं अमोडी । कुशांकुर ॥ १८२ ॥ सकोमळ सरिसे । सुबद्ध राहती आपैसे । एकपाडें तैसें । वोजा घालीं ॥ १८३ ॥ परि सावियाचि उंच होईल । तरी आंग हन डोलेल । नीच तरी पावेल । भूमिदोषु ॥ १८४ ॥ म्हणौनि तैसें न करावें । समभावें धरावें । हें बहु असो होआवें । आसन ऐसें ॥ १८५ ॥

(\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः । उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२॥

मग तेथ आपण । एकाग्र अंतःकरण । करूनि सद्गुरुस्मरण । अनुभविजे ॥ १८६ ॥ जेथ स्मरतेनि आदरें । सबाह्य सात्त्विकं भरे । जंव काठिण्य विरे । अहंभावाचें ॥ १८७ ॥ विषयांचा विसरु पडे । इंद्रियांची कसमस मोडे ।

मनाची घडी घडे । हृदयामाजीं ॥ १८८ ॥ ऐसें ऐक्य हें सहजें। फावें तंव राहिजे। मग तेणेंचि बोधें बैसिजे । आसनावरी ॥ १८९ ॥ आतां आंगातें आंग वरी । पवनातें पवनु धरी । ऐसी अनुभवाची उजरी । होंचि लागे ॥ १९० ॥ प्रवृत्ति माघौति मोहरे । समाधि ऐलाडी उतरे । आघवें अभ्यासु सरे । बैसतखेंवो ॥ १९१ ॥ मुद्रेची प्रौढी ऐशी । तेचि सांगिजेल आतां परियेसीं । तरी उरु या जघनासी । जडोनि घालीं ॥ १९२ ॥ चरणतळें देव्हडीं । आधारद्रमाच्या बुडीं । सुघटितें गाढीं । संचरीं पां ॥ १९३ ॥ सव्य तो तळीं ठेविजे । तेणें सिवणीमध्यें पीडिजे । वरी बैसे तो सहजें । वाम चरणु ॥ १९४ ॥ गुद मेंद्राआंतौतीं । चारी अंगुळें निगुतीं । तेथ सार्ध सार्ध प्रांतीं । सांडूनियां ॥ १९५ ॥ माजी अंगुळ एक निगे । तेथ टांचेचेनि उत्तरभागें । नेहेटिजे वरि आंगें । पेललेनि ॥ १९६ ॥ उचिललें कां नेणिजे । तैसें पृष्ठांत उचिलजे । गुल्फद्वय धरिजे । तेणेंचि मानें ॥ १९७ ॥ मग शरीर संचु पार्था । अशेषही सर्वथा । पार्ष्णीचा माथा । स्वयंभु होय ॥ १९८ ॥ अर्जुना हें जाण । मूळबंधाचें लक्षण । वज्रासन गौण । नाम यासी ॥ १९९ ॥

ऐसी आधारीं मुद्रा पडे । आणि आधींचा मार्गु मोडे । तथ अपानु आंतुलेकडे । वोहोटों लागे ॥ २०० ॥

<<p><</p>
<</p>

<</p>

<</p>

<</p>
<</p>
<</p>

</

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः । संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३॥

तंव करसंपुट आपैसें। वाम चरणीं बैसे। तंव बाहुमूळीं दिसे । थोरीव आली ॥ २०१ ॥ माजीं उभारलेनि दंडें । शिरकमळ होय गाढें । नेत्रद्वारींचीं कवाडें । लागूं पाहती ॥ २०२ ॥ वरचिलें पातीं ढळतीं । तळींचीं तळीं पुंजाळती । तेथ अर्थोन्मीलित स्थिती । उपजे तया ॥ २०३ ॥ दिठी राहोनि आंतुलीकडे । बाहेर पाऊल घाली कोडें । ते ठायीं ठावो पड़े । नासाग्रपीठीं ॥ २०४ ॥ ऐसें आंतुच्या आंतुचि रचे । बाहेरी मागुतें न वचे । म्हणौनि राहणें आधिये दिठीचें । तेथेंचि होय ॥ २०५ ॥ आतां दिशांची भेटी घ्यावी । कां रूपाची वास पहावी । हे चाड सरे आघवी । आपैसया ॥ २०६ ॥ मग कंठनाळ आटे । हनुवटी हडौती दाटे । ते गाढी होऊनि नेहटे । वक्षःस्थळीं ॥ २०७ ॥ माजीं घंटिका लोपे । वरी बंधु जो आरोपे । तो जालंधरु म्हणिपे । पंडुकुमरा ॥ २०८ ॥ नाभीवरी पोखे । उदर हें थोके । अंतरीं फांके । हृदयकोशु ॥ २०९ ॥

स्वाधिष्ठानावरिचिले कांठीं । नाभिस्थानातळवटीं । बंधु पडे किरीटी । वोढियाणा तो ॥ २१० ॥

490490490490490490490490490490490

प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिवरते स्थितः । मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४॥

ऐसी शरीराबाहेरलीकडे । अभ्यासाची पांखर पडे । तंव आंतु त्राय मोडे । मनोधर्माची ॥ २११ ॥ कल्पना निमे । प्रवृत्ती शमे । आंग मन विरमे । सावियाचि ॥ २१२ ॥ क्षुधा काय जाहाली । निद्रा केउती गेली । हे आठवणही हारपली । न दिसे वेगां ॥ २१३ ॥ जो मूळबंधें कोंडला । अपानु माघौता मुरडला । तो सवेंचि वरी सांकडला । धरी फुगूं ॥ २१४ ॥ क्षोभलेपणें माजे । उवाइला ठायीं गाजे । मणिपूरेंसीं झुंजे । राहोनियां ॥ २१५ ॥ मग थावलिये वाहदुळी । सैंघ घेऊनि घर डहुळी । बाळपणींची कुहीटुळी । बाहेर घाली ॥ २१६ ॥ भीतरीं वळी न धरे । कोठ्यामाजीं संचरे । कफपित्तांचे थारे । उरों नेदी ॥ २१७ ॥ धातूंचे समुद्र उलंडी । मेदाचे पर्वत फोडी । आंतली मज्जा काढी । अस्थिगत ॥ २१८ ॥ नाडीतें सोडवी । गात्रांतें विघडवी । साधकातें भेडसावी । परी बिहावें ना ॥ २१९ ॥

व्याधीतें दावी । सवेंचि हरवी । आप पृथ्वी कालवी । एकवाट ॥ २२० ॥ तंव येरीकडे धनुर्धरा । आसनाचा उबारा । शक्ति करी उजगरा । कुंडलिनीतें ॥ २२१ ॥ नागिणीचें पिलें । कुंकुमें नाहलें । वळण घेऊनि आलें। सेजे जैसें॥ २२२॥ तैशी ते कुंडलिनी । मोटकी औट वळणी । अधोमुख सर्पिणी । निदेली असे ॥ २२३ ॥ विद्युल्लतेची विडी । वन्हिज्वाळांची घडी । पंधरेयाची चोखडी । घोंटीव जैशी ॥ २२४ ॥ तैशी सुबद्ध आटली । पुटीं होती दाटली । तें वज्रासनें चिमुटली । सावधु होय ॥ २२५ ॥ तेथ नक्षत्र जैसें उलंडलें । कीं सूर्याचें आसन मोडलें । तेजाचें बीज विरूढलें । अंकुरेंशीं ॥ २२६ ॥ तैशी वेढियातें सोडिती । कवतिकें आंग मोडिती । कंदावरी शक्ती । उठली दिसे ॥ २२७ ॥ सहजें बहुतां दिवसांची भूक । वरी चेवविली तें होय मिष । मग आवेशें पसरी मुख । ऊर्ध्वा उजू ॥ २२८ ॥ तेथ हृदयकोशातळवटीं । जो पवनु भरे किरीटी । तया सगळेयाचि मिठी । देऊनि घाली ॥ २२९ ॥ मुखींच्या ज्वाळीं। तळीं वरी कवळी। मांसाची वडवाळी । आरोगूं लागे ॥ २३० ॥ जे जे ठाय समांस । तेथ आहाच जोडे घाउस ।

पाठी एकदोनी घांस । हियाही भरी ॥ २३१ ॥ मग तळवे तळहात शोधी । उर्ध्वींचे खंड भेदी । झाडा घे संधी । प्रत्यंगाचा ॥ २३२ ॥ अधोभाग तरी न संडी । परि नखींचेंही सत्त्व काढी । त्वचा धुवूनि जडी । पांजरेशीं ॥ २३३ ॥ अस्थींचे नळे निरपे । शिरांचे हीर वोरपे । तंव बाहेरी विरूढी करपे । रोमबीजांची ॥ २३४ ॥ मग सप्तधातूंच्या सागरीं । ताहानेली घोंट भरी । आणि सर्वेचि उन्हाळा करी । खडखडीत ॥ २३५ ॥ नासापुटौनि वारा । जो जातसे अंगुळें बारा । तो गच्च धरूनि माघारा । आंतु घाली ॥ २३६ ॥ तेथ अध वरौतें आकुंचे । ऊर्ध्व तळौतें खांचे । तया खेंवामाजि चक्राचे । पदर उरती ॥ २३७ ॥ ए-हवीं तरी दोन्ही तेव्हांचि मिळती । परी कुंडलिनी नावेक दुश्चित्त होती । ते तयांतें म्हणे परौती । तुम्हीचि कायसी एथें ॥२३८॥ आइकें पार्थिव धातु आघवी । आरोगितां कांहीं नुरवी । आणि आपातें तंव ठेवी । पुसोनियां ॥ २३९ ॥ ऐसी दोनी भूतें खाये । ते वेळीं संपूर्ण धाये । मग सौम्य हौनि राहे । सुषुम्नेपाशीं ॥ २४० ॥ तथ तृप्तीचेनि संतोषें। गरळ जें वमी मुखें। तेणें तियेचेनि पीयूषें । प्राणु जिये ॥ २४१ ॥ तो अग्नि आंतृनि निघे । परी सबाह्य निववृंचि लागे । ते वेळीं कसु बांधिती आंगें। सांडिला पुढती॥ २४२॥

मार्ग मोडिती नाडीचे । नवविधपण वायूचें । जाय म्हणौनि शरीराचे । धर्मु नाहीं ॥ २४३ ॥ इडा पिंगळा एकवटती । गांठी तिन्ही सुटती । साही पदर फुटती । चक्रांचे हे ॥ २४४ ॥ मग शशी आणि भानु । ऐसा कल्पिजे जो अनुमानु । तो वातीवरी पवनु । गिंवसितां न दिसे ॥ २४५ ॥ बुद्धीची पुळिका विरे । परिमळु घ्राणीं उरे । तोही शक्तीसवें संचरे । मध्यमेमाजीं ॥ २४६ ॥ तंव वरिलेकडोनि ढाळें । चंद्रामृताचें तळें । कानवडोनी मिळे। शक्तिमुखीं ॥ २४७ ॥ तेणें नाळकें रस भरे । तो सर्वांगामाजीं संचरे । जेथिंचा तेथ मुरे । प्राणपवनु ॥ २४८ ॥ तातलिये मुसें । मेण निघोनि जाय जैसें । मग कोंदली राहे रसें । वोतलेनी ॥ २४९ ॥ तैसें पिंडाचेनि आकारें। ते कळाचि कां अवतरे। वरी त्वचेचेनि पदरे । पांघुरली असे ॥ २५० ॥ जैशी आभाळाची बुंथी । करूनि राहे गभस्ती । मग फिटलिया दीप्ति । धरूनि ये ॥ २५१ ॥ तैसा आहाचवरि कोरडा । त्वचेचा असे पातोडा । तो झडोनि जाय कोंडा । जैसा होय ॥ २५२ ॥ मग काश्मीरीचे स्वयंभ । कां रत्नबीजा निघाले कोंभ । अवयवकांतीची भांब । तैसी दिसे ॥ २५३ ॥ नातरी संध्यारागींचे रंग । काढूनि वळिलें तें आंग ।

कीं अंतर्ज्योतीचें लिंग । निर्वाळिलें ॥ २५४ ॥ कुंकुमाचें भरींव । सिद्धरसाचें वोतींव । मज पाहतां सावेव । शांतिचि ते ॥ २५५ ॥ तें आनंदचित्रींचें लेप । नातरी महासुखाचें रूप । कीं संतोषतरूचें रोप । थांबलें जैसें ॥ २५६ ॥ तो कनकचंपकाचा कळा । कीं अमृताचा पुतळा । नाना सासिन्नला मळा । कोंवळिकेचा ॥ २५७ ॥ हो कां जे शारदियेचेनि वोलें । चंद्रबिंब पाल्हेलें । कां तेजिच मूर्त बैसलें । आसनावरी ॥ २५८ ॥ तैसें शरीर होये । जे वेळीं कुंडलिनी चंद्र पीये । मग देहाकृति बिहे । कृतांतु गा ॥ २५९ ॥ वार्धक्य तरी बहुडे । तारुण्याची गांठी विघडे । लोपली उघडे । बाळदशा ॥ २६० ॥ वयसा तरी येतुलेवरी । ए-हवीं बळाचा बळार्थु करी । धैर्याची थोरी । निरुपमु ॥ २६१ ॥ कनकदुमाच्या पालवीं । रत्नकळिका नित्य नवी । नखें तैसीं बरवीं । नवीं निघती ॥ २६२ ॥ दांतही आन होती । परि अपाडें सानेजती । जैसी दुबाहीं बैसे पांती । हिरेयांची ॥ २६३ ॥ माणिकुलियांचिया कणिया । सावियाचि अणुमानिया । तैसिया सर्वांगीं उधवती अणियां । रोमांचियां ॥ २६४ ॥ करचरणतळें । जैसीं कां रातोत्पलें । पाखाळींव होती डोळे । काय सांगों ॥ २६५ ॥

निडाराचेनि कोंदाटें। मोतियें नावरती संपुटें। मग शिवणी जैशी उतटे । शुक्तिपल्लवांची ॥ २६६ ॥ तैशीं पातियांचिये कवळिये न समाये । दिठी जाकळोनि निघों पाहे । आधिलीचि परी होये । गगना कवळिती ॥ २६७ ॥ आइके देह होय सोनियाचें । परि लाघव ये वायूचें । जे आप आणि पृथ्वीचे । अंशु नाहीं ॥ २६८ ॥ मग समुद्रापैलीकडील देखे । स्वर्गींचा आलोचु आइके । मनोगत वोळखे । मुंगियेचें ॥ २६९ ॥ पवनाचा वारिकां वळघे । चाले तरी उदकीं पाऊल न लागे । येणें येणें प्रसंगें । येती बहुता सिद्धि ॥ २७० ॥ आइकें प्राणाचा हातु धरूनी । गगनाची पाउटी करूनी । मध्यमेचेनि दादराहुनी । हृदया आली ॥ २७१ ॥ ते कुंडलिनी जगदंबा । जे चैतन्यचक्रवर्तीची शोभा । जया विश्वबीजाचिया कोंभा । साउली केली ॥ २७२ ॥ जे शून्यलिंगाची पिंडी । जे परमात्मया शिवाची करंडी । जे प्रणवाची उघडी । जन्मभूमी ॥ २७३ ॥ हें असो ते कुंडलिनी बाळी । हृदयाआंतु आली । अनुहताची बोली । चावळे ते ॥ २७४ ॥ शक्तीचिया आंगा लागलें । बुद्धीचें चैतन्य होतें जाहलें । तें तेणें आइकिलें । अळुमाळु ॥ २७५ ॥ घोषाच्या कुंडीं । नादचित्रांचीं रूपडीं । प्रणवाचिया मोडी । रेखिलीं ऐसीं ॥ २७६ ॥ हेंचि कल्पावें तरी जाणिजे । परी कल्पितें कैचें आणिजे ।

तरी नेणों काय गाजे । तिये ठायीं ॥ २७७ ॥ विसरोनि गेलों अर्जुना । जंव नाशु नाहीं पवना । तंव वाचा आथी गगना । म्हणौनि घुमे ॥ २७८ ॥ तया अनाहताचेनि मेघें। आकाश दुमदुमों लागे। तंव ब्रह्मस्थानींचें बेगें। सहज फिटे॥ २७९॥ आइकें कमळगर्भाकारें । जें महदाकाश दुसरें । जेथ चैतन्य आधातुरं । करूनि असिजे ॥ २८० ॥ तया हृदयाच्या परिवरीं । कुंडलिनिया परमेश्वरी । तेजाची शिदोरी । विनियोगिली ॥ २८१ ॥ बुद्धीचेनि शाकें। हातबोनें निकें। द्वैत तेथ न देखे । तैसें केलें ॥ २८२ ॥ निजकांती हारविली । मग प्राणुचि केवळ जाहाली । ते वेळीं कैसी गमली । म्हणावी पां हो कां जे पवनाची पुतळी । पांघुरली होती सोनसळी । ते फेड्रनियां वेगळी । ठेविली तिया ॥ २८४ ॥ नातरी वायूचेनि आंगें झगटली । दीपाची दिठी निवटली । कां लखलखोनि हारपली । वीजु गगनीं ॥ २८५ ॥ तैशी हृदयकमळवेर्हीं । दिसे जैशी सोनियाची सरी । नातरी प्रकाशजळाची झरी । वाहत आली ॥ २८६ ॥ मग ते हृदयभूमी पोकळे । जिराली कां एके वेळे । तैसें शक्तीचें रूप मावळे । शक्तीचिमाजीं ॥ २८७ ॥ तेव्हां तरी शक्तीचि म्हणिजे । ए-हवीं तो प्राणु केवळ जाणिजे । आतां नादुबिंदु नेणिजे । कळा ज्योती ॥ २८८ ॥

<</p>

<</p>

<</p>

<</p>

<</p>

<</p>

</p

मनाचा हन मारु । कां पवनाचा आधारु ।
ध्यानाचा आदरु । नाहीं परी ॥ २८९ ॥
हे कल्पना घे सांडी । तें नाहीं इये परवडी ।
हे महाभूतांची फुडी । आटणी देखां ॥ २९० ॥
पिंडें पिंडाचा ग्रासु । तो हा नाथसंकेतींचा दंशु ।
पिर दाऊनि गेला उद्देशु । श्रीमहाविष्णु ॥ २९१ ॥
तया ध्वनिताचें केणें सोडुनि । यथार्थाची घडी झाडुनी ।
उपलिवली म्यां जाणुनी । ग्राहीक श्रोते ॥ २९२ ॥

A CONTRACTOR OF A CONTRACTOR O

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः । शान्ति निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५॥

ऐकें शक्तीचें तेज जेव्हां लोपे । तेथ देहाचें रूप हारपे ।

मग तो डोळ्यांमाजीं लपे । जगाचिया ॥ २९३ ॥
ए-हवीं आधिलाचि ऐसें । सावयव तरी दिसे ।

परी वायूचें कां जैसें । विळलें होय ॥ २९४ ॥
नातरी कर्दळीचा गाभा । बुंथी सांडोनी उभा ।
कां अवयवचि नभा । उदयला तो ॥ २९५ ॥
तैसें होय शरीर । तैं तें म्हणिजे खेचर ।
हें पद होतां चमत्कार । पिंडजनीं ॥ २९६ ॥
देखें साधकु निघोनि जाये । मागां पाउलांची वोळ राहे ।
तेथ ठायीं ठायीं होये । अणिमादिक ॥ २९७ ॥
परि तेणें काय काज आपणयां । अवधारीं ऐसा धनंजया ।
लोप आथी भूतत्रया । देहींचा देहीं ॥ २९८ ॥

पृथ्वीतें आप विरवी । आपातें तेज जिरवी । तेजातें पवनु हरवी । हृदयामाजीं ॥ २९९ ॥ पाठीं आपण एकला उरे । परि शरीराचेनि अनुकारें । मग तोही निगे अंतरें । गगना मिळे ॥ ३०० ॥ ते वेळीं कुंडलिनी हे भाष जाये। मग मारुती ऐसें नाम होये । परि शक्तिपण तें आहे । जंव न मिळे शिवीं ॥ ३०१ ॥ मग जालंधर सांडी । ककारांत फोडी । गगनाचिये पाहाडीं । पैठी होय ॥ ३०२ ॥ ते ॐ काराचिये पाठी । पाय देत उठाउठी । पश्यंतीचिये पाउटी । मागां घाली ॥ ३०३ ॥ पुढां तन्मात्रा अर्धवेरी । आकाशाच्या अंतरीं । भरती गमे सागरीं । सरिता जेवीं ॥ ३०४ ॥ मग ब्रह्मरंध्रीं स्थिरावोनी । सोऽहंभावाच्या बाह्या पसरुनी । परमात्मलिंगा धांवोनी । आंगा घडे ॥ ३०५ ॥ तंव महाभूतांची जवनिका फिटे। मग दोहींसि होय झटें। तेथ गगनासकट आटे । समरसीं तिये ॥ ३०६ ॥ पें मेघाचेनि मुखीं निवडिला । समुद्र कां वोघीं पडिला । तो मागुता जैसा आला । आपणपयां ॥ ३०७ ॥ तेवीं पिंडाचेनि मिषें। पदीं पद प्रवेशे। तें एकत्व होय तैसें । पंडुकुमरा ॥ ३०८ ॥ आतां दुजें हन होतें । कीं एकचि हें आइतें । ऐशिये विवंचनेपुरतें । उरेचिना ॥ ३०९ ॥ गगनीं गगन लया जाये। ऐसें जें कांहीं आहे।

तें अनुभवें जो होये । तो होऊनि ठाके ॥ ३१० ॥ म्हणौनि तेथिंची मातु । न चढेचि बोलाचा हातु । जेणें संवादाचिया गांवाआंतु । पैठी कीजे ॥ ३११ ॥ अर्जुना ए-हवीं तरी । इया अभिप्रायाचा जे गर्व धरी । ते पाहें पां वैखरी । दुरी ठेली ॥ ३१२ ॥ भूलता मागिलीकडे । तेथ मकाराचेंचि आंग न मांडे । सडेया प्राणा सांकडें । गगना येतां ॥ ३१३ ॥ पाठीं तेथेंचि तो भेसळला । तैं शब्दाचा दिवो मावळला । मग तयाहि वरी आटु भविन्नला । आकाशाचा ॥ ३१४ ॥ आतां महाशून्याचिया डोहीं । जेथ गगनसीचि थावो नाहीं । तथ तागा लागेल काई । बोलाचा इया ॥ ३१५ ॥ म्हणौनि आखरामाजीं सांपडे । कीं कानवरी जोडे । हे तैसें नव्हे फुडें। त्रिशुद्धी गा॥ ३१६॥ जें कहीं दैवें । अनुभविलें फावे । तैं आपणचि हें ठाकावें । होऊनियां ॥ ३१७ ॥ पुढती जाणणें तें नाहींचि । म्हणौनि असो किती हेंचि । बोलावें आतां वायांचि । धनुर्धरा ॥ ३१८ ॥ ऐसें शब्दजात माघौतें सरे । तेथ संकल्पाचें आयुष्य पुरे । वाराही जेथ न शिरे । विचाराचा ॥ ३१९ ॥ जें उन्मनियेचें लावण्य । जें तुर्येचें तारुण्य । अनादि जें अगण्य । परमतत्त्व ॥ ३२० ॥ जें विश्वाचें मूळ । जें योगद्रुमाचें फळ । जें आनंदाचें केवळ । चैतन्य गा ॥ ३२१ ॥

<</p>

<

जें आकाराचा प्रांतु । जें मोक्षाचा एकांतु । जेथ आदि आणि अंतु । विरोनी गेले ॥ ३२२ ॥ जें महाभूतांचें बीज । जें महातेजाचें तेज । एवं पार्था जें निज- । स्वरूप माझें ॥ ३२३ ॥ ते हे चतुर्भुज कोंभेली । जयाची शोभा रूपा आली । देखोनि नास्तिकीं नोकिलीं । भक्तवृंदें ॥ ३२४ ॥ तें अनिर्वाच्य महासुख । पैं आपणचि जाहले जे पुरुष । जयांचे कां निष्कर्ष । प्राप्तिवेरीं ॥ ३२५ ॥ आम्हीं साधन हें जें सांगितलें । तेंचि शरीरीं जिहीं केलें । ते आमुचेनि पाडें आले । निर्वाळलेया ॥ ३२६ ॥ परब्रह्माचेनि रसें । देहाकृतीचिये मुसें । वोतींव जाहले तैसे । दिसती आंगें ॥ ३२७ ॥ जरी हे प्रतीति हन अंतरीं फांके । तरी विश्वचि हें अवधें झांके । तंव अर्जुन म्हणे निकें । साचचि जी हें ॥ ३२८ ॥ कां जें आपण आतां देवो । हा बोलिले जो उपावो । तो प्राप्तीचा ठावो । म्हणोनि घडे ॥ ३२९ ॥ इये अभ्यासीं जे दृढ होती । ते भरंवसेनि ब्रह्मत्वा येती । हें सांगतियाची रीती । कळलें मज ॥ ३३० ॥ देवा गोठीचि हे ऐकतां । बोधु उपजतसे चित्ता । मा अनुभवें तल्लीनता । नोहेल केवीं ॥ ३३१ ॥ म्हणौनि एथ कांहीं । अनारिसें नाहीं । परी नावभरी चित्त देई । बोला एका ॥ ३३२ ॥ आतां कृष्णा तुवां सांगितला योगु । तो मना तरी आला चांगु

। परि न शकें करूं पांगु । योग्यतेचा ॥ ३३३ ॥ सहजें आंगिक जेतुलें आहे । तेतुलियाची जरी सिद्धि जाये । तरी हाचि मार्गु सुखोपायें । अभ्यासीन ॥ ३३४ ॥ नातरी देवो जैसें सांगतील । तैसें आपणपें जरी न ठकेल । तरी योग्यतेवीण होईल । तेंचि पुसों ॥ ३३५ ॥ जीवींचिये ऐसी धारण । म्हणोनि पुसावया जाहलें कारण । मग म्हणे तरी आपण । चित्त देइजो ॥ ३३६ ॥ हां हो जी अवधारिलें । जें हें साधन तुम्हीं निरूपिलें । तें आवडतयाहि अभ्यासिलें । फावों शके कीं योग्यतेवीण नाहीं । ऐसें हन आहे कांहीं । तेथ श्रीकृष्ण म्हणती काई । धनुर्धरा ॥ ३३८ ॥ हें काज कीर निर्वाण । परि आणिकही जें कांहीं साधारण । तेंही अधिकाराचे वोडवेविण । काय सिद्धि जाय ॥ ३३९ ॥ पैं योग्यता जे म्हणिजे । ते प्राप्तीची अधीन जाणिजे । कां जे योग्य होऊनि कीजे। तें आरंभिलें फळें॥ ३४०॥ तरी तैसी एथ कांहीं। सावियाचि केणी नाहीं। आणि योग्यतेची काई । खाणी असे ॥ ३४१ ॥ नावेक विरक्तु । जाहला देहधर्मीं नियतु । तरि तोचि नव्हे व्यवस्थितु । अधिकारिया ॥ ३४२ ॥ येतुलालिये आयणीमाजिवडें । योग्यपण तूतेंही जोडे । ऐसें प्रसंगें सांकडें । फेडिलें तयाचें ॥ ३४३ ॥ मग म्हणे पार्था । ते हे ऐसी व्यवस्था । अनियतासि सर्वथा । योग्यता नाहीं ॥ ३४४ ॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः । न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ १६॥

4\$>4\$>4\$>4\$>4\$>4\$>

जो रसनेंद्रियाचा अंकिला । कां निद्रेसी जीवें विकला । तो नाहींच एथ म्हणितला । अधिकारिया ॥ ३४५ ॥ अथवा आग्रहाचिये बांदोडी । क्षुधा तृषा कोंडी । आहारातें तोडी । मारूनियां ॥ ३४६ ॥ निद्रेचिया वाटा नवचे । ऐसा दृढिवेचेनि अवतरणें नाचे । तें शरीरचि नव्हे तयाचें । मा योगु कवणाचा ॥ ३४७ ॥ म्हणौनि अतिशयें विषयो सेवावा । तैसा विरोधु नोहावा । कां सर्वथा निरोधावा । हेंही नको ॥ ३४८ ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु । युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७॥

आहार तरी सेविजे । परी युक्तीचेनि मापें मविजे । क्रियाजात आचरिजे । तयाचि स्थिती ॥ ३४९ ॥ मितला बोलीं बोलिजे । मितलिया पाउलीं चालिजे । निद्रेही मानु दीजे । अवसरें एकें ॥ ३५० ॥ जागणें जरी जाहलें । तरी होआवें तें मितलें । येतुलेनि धातुसाम्य संचलें । असेल सहजें ॥ ३५१ ॥ ऐसें युक्तीचेनि हातें । जें इंद्रियां वोपिजे भातें । तैं संतोषासी वाढतें । मनचि करी ॥ ३५२ ॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते । निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ १८॥

BPKBPKBPKBPKBPKBPKBPKBPKBPKBPKBP

बाहेर युक्तीची मुद्रा पडे । तव आंत आंत सुख वाढे । तेथें सहजेंचि योगु घडे । नाभ्यासितां ॥ ३५३ ॥ जैसें भाग्याचिया भडसें । उद्यमाचेनि मिसें । मग समृद्धिजात आपैसें । घर रिघे ॥ ३५४ ॥ तैसा युक्तिमंतु कौतुकें । अभ्यासाचिया मोहरा ठाके । आणि आत्मसिद्धीचि पिके । अनुभवु तयाचा ॥ ३५५ ॥ म्हणोनि युक्ति हे पांडवा । घडे जया सदैवा । तो अपवर्गीचिये राणिवा । अळंकारिजे ॥ ३५६ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता । योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ १९॥

युक्ति योगाचें आंग पावे । ऐसें प्रयाग जेथ होय बरवें ।
तेथ क्षेत्रसंन्यासें स्थिरावें । मानस जयाचें ॥ ३५७ ॥
तयातें योगयुक्त तूं म्हण । हेंही प्रसंगें जाण ।
तें दीपाचे उपलक्षण । निर्वातींचिया ॥ ३५८ ॥
आतां तुझें मनोगत जाणोनी । कांहीं एक आम्ही म्हणौनि ।
तें निकें चित्त देउनी । परिसावें गा ॥ ३५९ ॥
तूं प्राप्तीची चाड वाहसी । परी अभ्यासीं दक्षु नव्हसी ।
तें सांग पां काय बिहसी । दुवाडपणा ॥ ३६० ॥
तरी पार्था हें झणें । सायास घेशीं हो मनें ।
वायां बागूल इये दुर्जनें । इंद्रियें करिती ॥ ३६१ ॥

पाहें पां आयुष्यातें अढळ करी । जें सरतें जीवित वारी । तया औषधातें वैरी । काय जिव्हा न म्हणे ॥ ३६२ ॥ ऐसें हितासि जें जें निकें । तें सदाचि या इंद्रियां दुःखें । ए-हवीं सोपें योगासारिखें । कांहीं आहे ॥ ३६३ ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया । यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ २०॥

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् । वित्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलित तत्त्वतः ॥ २१॥

म्हणौनि आसनाचिया गाढिका । जो आम्हीं अभ्यासु सांगितला निका । तेणें होईल तरी हो कां । निरोधु यया ॥ ३६४ ॥ ए-हवीं तरी येणें योगें । जैं इंद्रियां विंदाण लागे । तें चित्त भेटों रिगे । आपणपेयां ॥ ३६५ ॥ परतोनि पाठिमोरें ठाके । आणि आपणियांतें आपण देखे । देखतखेवों वोळखे । म्हणे तत्त्व हें मी ॥ ३६६ ॥ तिये ओळखीचिसरिसें । सुखाचिया साम्राज्यीं बैसे । मग आपणपां समरसें । विरोनि जाय ॥ ३६७ ॥ जयापरतें आणिक नाहीं । जयातें इंद्रियें नेणती कहीं । तें आपणिच आपुलिया ठायीं । होऊनि ठाके ॥ ३६८ ॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः । यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ २२॥

मग मेरूपासूनि थोरें । देह दुःखाचेनि डोंगरें । दाटिजो पां पडिभरें । चित्त न दटे ॥ ३६९ ॥ कां शस्त्रें वरी तोडिलिया । देह अग्निमाजीं पडिलिया । चित्त महासुखीं पहुडिलिया । चेवोचि नये ॥ ३७० ॥ ऐसें आपणपां रिगोनि ठाये । मग देहाची वासु न पाहे । आणिकिच सुख होऊनि जाये । म्हणूनि विसरे ॥ ३७१ ॥

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् । स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ २३॥

जया सुखाचिया गोडी । मग आर्तीची सेचि सोडी । संसाराचिया तोंडीं । गुंतलें जें ॥ ३७२ ॥ जें योगाची बरव । संतोषाची राणिव । ज्ञानाची जाणीव । जयालागीं ॥ ३७३ ॥ तें अभ्यासिलेनि योगें । सावयव देखावें लागे । देखिलें तरी आंगें । होईजेल गा ॥ ३७४ ॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः । मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ २४॥

तिर तोचि योगु बापा । एके परी आहे सोपा । जरी पुत्रशोकु संकल्पा । दाखिवजे ॥ ३७५ ॥ हां विषयातें निमालिया आइके । इंद्रियें नेमाचिया धारणीं देखे । तरी हियें घालूनि मुके । जीवित्वासी ॥ ३७६ ॥ एसं वैराग्य हें करी । तरी संकल्पाची सरे वारी । सुखें धृतीचिया धवळारीं । बुद्धि नांदे ॥ ३७७ ॥

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया । आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न कींचिदपि चिन्तयेत् ॥ २५॥

यतो यतो निश्चरित मनश्चंचलमस्थिरम् । ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६॥

बुद्धी धैर्या होय वसौटा । मनातें अनुभवाचिया वाटा ।
हळु हळु करी प्रतिष्ठा । आत्मभुवनीं ॥ ३७८ ॥
याही एके परी । प्राप्ती आहे विचारीं ।
हें न ठके तरी सोपारी । आणिक ऐकें ॥ ३७९ ॥
आतां नियमुचि हा एकला । जीवें करावा आपुला ।
जैसा कृतनिश्चयाचिया बोला- । बाहेरा नोहे ॥ ३८० ॥
जरी येतुलेनि चित्त स्थिरावें । तरी काजा आलें स्वभावें ।
नाहीं तरी घालावें । मोकलुनी ॥ ३८९ ॥
मग मोकलिलें जेथ जाईल । तेथूनि नियमूचि घेउनि येईल ।
ऐसेनि स्थैर्यचि होईल । सावियाचि कीं ॥ ३८२ ॥

प्रशान्तमनसं होनं योगिनं सुखमुत्तमम् । उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७॥

पाठीं केतुलेनि एके वेळे । तया स्थैर्याचेनि मेळें । आत्मस्वरूपाजवळें । येईल सहजें ॥ ३८३ ॥ तयातें देखोनि आंगा घडेल । तेथ अद्वैतीं द्वैत बुडेल । आणि ऐक्यतेजें उघडेल । त्रैलोक्य हें ॥ ३८४ ॥ आकाशीं दिसे दुसरें । तें अभ्र जैं विरे । तें गगनचि कां भरे । विश्व जैसें ॥ ३८५ ॥ तैसें चित्त लया जाये । आणि चैतन्यचि आघवें होये । ऐसी प्राप्ति सुखोपायें । आहे येणें ॥ ३८६ ॥

Red Color Co

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः । सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ २८॥

या सोपिया योगस्थिती । उकलु देखिला गा बहुतीं । संकल्पाचिया संपत्ती । रुसोनियां ॥ ३८७ ॥ तें सुखाचेनि सांगातें । आलें परब्रह्मा आंतौतें । तथ लवण जैसें जळातें । सांडूं नेणें ॥ ३८८ ॥ तैसें होय तिये मेळीं । मग सामरस्याचिया राउळीं । महासुखाची दिवाळी । जगेंसि दिसे ॥ ३८९ ॥ ऐसें आपुले पायवरी । चालिजे आपुले पाठीवरी । हें पार्था नागवे तरी । आन ऐकें ॥ ३९० ॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९॥

जेणें ऐक्याचिये दिठी । सर्वत्र मातेंचि किरीटी । देखिला जैसा पटीं । तंतु एकु ॥ ३९८ ॥ कां स्वरूपें तरी बहुतें आहाती । परी तैसीं सोनीं बहुवें न होती । ऐसी ऐक्याचळाची स्थिती । केली जेणें ॥ ३९९ ॥

नातरी वृक्षांचीं पानें जेतुलीं । तेतुलीं रोपें नाहीं लाविलीं । ऐसी अद्वैतदिवसें पाहली । रात्री जया ॥ ४०० ॥ तो पंचात्मकीं सांपडे । तरी मग सांग पां कैसेनि अडे । जो प्रतीतीचेनि पाडें । मजसीं तुके ॥ ४०१ ॥ माझें व्यापकपण आघवें । गवसलें तयाचेनि अनुभवें । तरी न म्हणतां स्वभावें । व्यापकु जाहला ॥ ४०२ ॥ आतां शरीरीं तरी आहे । परी शरीराचा तो नोहे । ऐसें बोलवरी होये । तें करूं ये काई ॥ ४०३ ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यित योऽर्जुन । सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२॥

म्हणौनि असो तें विशेषें । आपणपेयांसारिखें ।
जो चराचर देखे । अखंडित ॥ ४०४ ॥
सुखदु:खादि वर्में । कां शुभाशुभें कर्में ।
दोनी ऐसीं मनोधमें । नेणेचि जो ॥ ४०५ ॥
हें सम विषम भाव । आणिकही विचित्र जें सर्व ।
तें मानी जैसे अवयव । आपुले होती ॥ ४०६ ॥
हें एकैक काय सांगावें । जया त्रैलोक्यिच आघवें ।
मी ऐसें स्वभावें । बोधा आलें ॥ ४०७ ॥
तयाही देह एकु कीर आथी । लौिककीं सुखदु:खी तयातें
म्हणती । परी आम्हांतें ऐसी प्रतीती । परब्रह्मचि हा ॥ ४०८ ॥
महणौनि आपणपां विश्व देखिजे । आणि आपण विश्व होईजे । ऐसें साम्यिच एक उपासिजे । पांडवा गा ॥ ४०९ ॥

हें तूतें बहुतीं प्रसंगीं । आम्ही म्हणों याचिलागीं । जे साम्यापरौती जगीं । प्राप्ति नाहीं ॥ ४१० ॥

अर्जुन उवाच । योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन । एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥ ३३॥

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दढम् । तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४॥

तंव अर्जुन म्हणे देवा । तुम्ही सांगा कीर आमुचिया कणवा । परी न पुरों जी स्वभावा । मनाचिया ॥ ४११ ॥ हें मन कैसें केवढें । ऐसें पाहों म्हणों तरी न सांपडें । ए-हवीं राहाटावया थोडें । त्रैलोक्य यया ॥ ४१२ ॥ म्हणौनि ऐसें कैसें घडेल । जे मर्कट समाधी येईल । कां राहा म्हणतिलया राहेल । महावातु ॥ ४१३ ॥ जें बुद्धीतें सळी । निश्चयातें टाळी । धैर्येसीं हातफळी । मिळऊनि जाय ॥ ४१४ ॥ जें विवेकातें भुलवी । संतोषासी चाड लावी । बैसिजे तरी हिंडवी । दाही दिशा ॥ ४१५ ॥ जें निरोधलें घे उवावो । जया संयमुचि होय सावावो । तें मन आपुला स्वभावो । सांडील काई ॥ ४१६॥ म्हणौनि मन एक निश्चळ राहेल । मग आम्हांसि साम्य होईल । हें विशेषेंही न घडेल । याचिलागीं ॥ ४१७ ॥

श्रीभगवानुवाच । असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् । अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५॥

तंव कृष्ण म्हणती साचिच । बोलत आहासि तें तैसेंचि । यया मनाचा कीर चपळिच । स्वभावो गा ॥ ४१८ ॥ परि वैराग्याचेनि आधारें । जरी लाविलें अभ्यासाचिये मोहरें । तरी केतुलेनि एके अवसरें । स्थिरावेल ॥ ४१९ ॥ कां जें यया मनाचें एक निकें । जें देखिलें गोडीचिया ठाया सोके । म्हणौनि अनुभवसुखचि कवतिकें । दावीत जाइजे ॥ ४२० ॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मितः । वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ ३६॥

ए-हवीं विरक्ति जयांसि नाहीं । जे अभ्यासीं न रिघती कहीं । तयां नाकळे हें आम्हीही । न मनूं कायी ॥ ४२१ ॥ पिर यमनियमांचिया वाटा न विचजे । कहीं वैराग्याची से न किरजे । केवळ विषयजळीं ठािकजे । बुडी देउनी ॥ ४२२ ॥ यया जािलया मानसा कहीं । युक्तीची कांबी लागली नाहीं । तरी निश्चळ होईल काई । कैसेनि सांगें ॥ ४२३ ॥ म्हणौनि मनाचा निग्रहो होये । ऐसा उपाय जो आहे । तो आरंभीं मग नोहे । कैसा पाहों ॥ ४२४ ॥ तरी योगसाधन जितुकें । कें अवधेंचि काय लिटकें । पिर आपणयां अभ्यासूं न ठाके । हेंचि म्हण ॥ ४२५ ॥ आंगीं योगाचें होय बळ । तरी मन केतुलें चपळ ।

काय महदादि हें सकळ । आपु नोहे ॥ ४२६ ॥ तथ अर्जुन म्हणे निकें । देवो बोलती तें न चुके । साचिच योगबळेंसीं न तुके । मनोबळ ॥ ४२७ ॥ तरी तोचि योगु कैसा केवीं जाणों । आम्ही येतुले दिवस याची मातुही नेणों । म्हणौनि मनातें जी म्हणों । अनावर ॥ ४२८ ॥ हा आतां अघवेया जन्मा । तुझेनि प्रसादें पुरुषोत्तमा । योगपरिचयो आम्हां । जाहला आजी ॥ ४२९ ॥

<<p><</p>
<</p>

<</p>
<</p>

<</p>
<</p>
<</p>

<</p>
<</p>
<</p>

</

अर्जुन उवाच । अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः । अप्राप्य योगसंसिद्धि कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥ ३७॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टिश्छिन्नाभ्रमिव नश्यित । अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८॥

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः । त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ ३९॥

परि आणिक एक गोसांविया । मज संशयो असे साविया । तो तूं वांचूिन फेडावया । समर्थु नाहीं ॥ ४३० ॥ म्हणौिन सांगें गोविंदा । कवण एकु मोक्षपदा । झोंबत होता श्रद्धा । उपायेंविण ॥ ४३१ ॥ इंद्रियग्रामोिन निघाला । आस्थेचिया वाटे लागला । आत्मिसिद्धिचिया पुढिला । नगरा यावया ॥ ४३२ ॥ तंव आत्मिसिद्धि न ठकेचि । आणि मागुतें न येववेचि । ऐसा अस्तु गेला माझारींचि । आयुष्यभानु ॥ ४३३ ॥ जैसें अकाळीं आभाळ । अळुमाळु सपातळ । विपायें आलें केवळ । वसे ना वर्षे ॥ ४३४ ॥ तैसीं दोन्ही दुरावलीं । जे प्राप्ती तंव अलग ठेली । आणि अप्राप्तीही सांडवली । श्रद्धा तया ॥ ४३५ ॥ ऐसा दोंला अंतरला कां जी । जो श्रद्धेच्या समाजीं । बुडाला तया हो जी । कवण गित ॥ ४३६ ॥

श्रीभगवानुवाच । पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते । न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४०॥

तंव कृष्ण म्हणती पार्था । जया मोक्षसुखीं आस्था । तया मोक्षावांचूनि अन्यथा । गती आहे गा ॥ ४३७ ॥ परि एतुलें हेंचि एक घडे । जें माझारीं विसवावें पडे । तेंही परी ऐसेनि सुरवाडें । जो देवां नाहीं ॥ ४३८ ॥ ए-हवीं अभ्यासाचा उचलता । पाउलीं जरी चालता । तरी दिवसाआधीं ठाकिता । सोऽहंसिद्धीतें ॥ ४३९ ॥ परि तेतुला वेगु नव्हेचि । म्हणौनि विसांवा तरी निकाचि । पाठीं मोक्षु तंव तैसाचि । ठेविला असे ॥ ४४० ॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः । शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१॥

ऐकें कवतिक हें कैसें। जें शतमखा लोक सायासें। तें तो पावे अनायासें । कैवल्यकामु ॥ ४४१ ॥ मग तेथिंचे जे अमोघ । अलौकिक भोग । भोगितांही सांग । कांटाळे मन ॥ ४४२ ॥ हा अंतरायो अवचितां । कां वोढवला भगवंता ऐसा दिविभोग भोगितां । अनुतापी नित्य ॥ ४४३ ॥ पाठीं जन्में संसारीं । परि सकळ धर्माचिया माहेरीं । लांबा उगवे आगरीं । विभवश्रियेचा ॥ ४४४ ॥ जयातें नीतिपंथें चालिजे । सत्यधूत बोलिजे । देखावें तें देखिजे । शास्त्रदृष्टीं ॥ ४४५ ॥ वेद तो जागेश्वरु । जया व्यवसाय निजाचारु । सारासार विचारु । मंत्री जया ॥ ४४६॥ जयाच्या कुळीं चिंता । जाली ईश्वराची पतिव्रता । जयातें गृहदेवता । आदि ऋद्धि ॥ ४४७ ॥ ऐसी निजपुण्याची जोडी । वाढिन्नली सर्वसुखाची कुळवाडी । तिये जन्मे तो सुरवाडी । योगच्युतु ॥ ४४८ ॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् । एतिद्धं दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२॥ तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् । यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ४३॥

अथवा ज्ञानाग्निहोत्री । जे परब्रह्मण्यश्रोत्री । महासुखक्षेत्रीं । आदिवंत ॥ ४४९ ॥

<\br sty><\br sty><\b

जे सिद्धांताचिया सिंहासनीं । राज्य करिती त्रिभुवनीं । जे कुजती कोकिल वनीं । संतोषाच्या ॥ ४५० ॥ जे विवेकद्रमाचे मुळीं । बैसले आहाति नित्य फळीं । तया योगियांचिया कुळीं । जन्म पावे ॥ ४५१ ॥ मोटकी देहाकृति उमटे । आणि निजज्ञानाची पाहांट फुटे । सूर्यापुढें प्रगटे । प्रकाशु जैसा ॥ ४५२ ॥ तैसी दशेची वाट न पाहतां । वयसेचिया गांवा न येतां । बाळपणींच सर्वज्ञता । वरी तयातें ॥ ४५३ ॥ तिये सिद्धप्रज्ञेचेनि लाभें। मनचि सारस्वतें दुभे। मग सकळ शास्त्रे स्वयंभें । निघती मुखें ॥ ४५४ ॥ ऐसें जे जन्म । जयालागीं देव सकाम । स्वर्गीं ठेले जप होम । करिती सदा ॥ ४५५ ॥ अमरीं भाट होईजे । मग मृत्युलोकातें वानिजे । ऐसें जन्म पार्था गा जे । तें तो पावे ॥ ४५६ ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव र्हियते ह्यवशोऽपि सः । जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ४४॥

आणि मागील जे सद्बुद्धि । जेथ जीवित्वा जाहाली होती अविध । मग तेचि पुढती निरविध । नवी लाहे ॥ ४५७ ॥ तेथ सदैवा आणि पायाळा । वरी दिव्यांजन होय डोळां । मग देखे जैसी अवलीळा । पाताळधनें ॥ ४५८ ॥ तैसें दुर्भेद जे अभिप्राय । कां गुरुगम्य हन ठाय । तेथ सौरसेंवीण जाय । बुद्धि तयाची ॥ ४५९ ॥

बळियें इंद्रियें येती मना । मन एकवटे पवना । पवन सहजें गगना । मिळोंचि लागे ॥ ४६० ॥ ऐसें नेणों काय अपैसें । तयातेंचि कीजे अभ्यासें । समाधि घर पुसे । मानसाचें ॥ ४६१ ॥ जाणिजे योगपीठीचा भैरवु । काय हा आरंभरंभेचा गौरवु । कीं वैराग्यसिद्धीचा अनुभवु । रूपा आला ॥ ४६२ ॥ हा संसारु उमाणितें माप । कां अष्टांगसामग्रीचें द्वीप । जैसें परिमळेंचि धरिजे रूप । चंदनाचें ॥ ४६३ ॥ तैसा संतोषाचा काय घडिला । कीं सिद्धिभांडारींहूनि काढिला । दिसे तेणें मानें रूढला । साधकदशे ॥ ४६४॥

< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>< (2)>

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः । अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५॥

जे वर्षशतांचिया कोडी । जन्मसहस्रांचिया आडी । लंघितां पातला थडी । आत्मिसद्धीची ॥ ४६५ ॥ म्हणौनि साधनजात आघवें । अनुसरे तया स्वभावें । मग आयितये बैसे राणिवे । विवेकाचिये ॥ ४६६॥ पाठीं विचारितया वेगां । तो विवेकही ठाके मागां । मग अविचारणीय तें आंगा । घडोनि जाय ॥ ४६७ ॥ तथ मनाचें मेहुडें विरे । पवनाचें पवनपण सरे । आपणपां आपण मुरे । आकाशही ॥ ४६८ ॥ प्रणवाचा माथा बुडे । येतुलेनि अनिर्वाच्य सुख जोडे । म्हणौनि आधींचि बोलु बहुडे । तयालागीं ॥ ४६९ ॥ ऐसी ब्रह्मींची स्थिती । जे सकळां गतींसी गती ।
तया अमूर्ताची मूर्ति । होऊनि ठाके ॥ ४७० ॥
तेणें बहुतीं जन्मीं मागिलीं । विक्षेपांचीं पाणिवळें झाडिलीं ।
म्हणौनि उपजतखेंवो बुडाली । लग्नघटिका ॥ ४७१ ॥
आणि तद्रूपतेसीं लग्न । लागोनि ठेलें अभिन्न ।
जैसे लोपलें अभ्र गगन । होऊनि ठाके ॥ ४७२ ॥
तैसें विश्व जेथ होये । मागौतें जेथ लया जाये ।
तें विद्यमानेंचि देहें । जाहला तो गा ॥ ४७३ ॥

<</p>

<</p>
<</p>

<</p>
<</p>

<</p>

</p

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः । कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ ४६॥

जया लाभाचिया आशा । करूनि धैर्यबाहूंचा भरंवसा । घालीत षट्कर्मांचा धारसां । कर्मनिष्ठ ॥ ४७४ ॥ कां जिये एक वस्तूलांगीं । बाणोनि ज्ञानाची वज्रांगी । झुंजत प्रपंचेंशीं समरंगीं । ज्ञानिये गा ॥ ४७५ ॥ अथवा निलागें निसरडा । तपोदुर्गाचा आडकडा । झोंबती तिपये चाडा । जयाचिया ॥ ४७६ ॥ जें भजितयां भज्य । याज्ञिकांचें याज्य । एवं जें पूज्य । सकळां सदा ॥ ४७७ ॥ तेंचि तो आपण । स्वयें जाहला निर्वाण । जें साधकांचें कारण । सिद्ध तत्त्व ॥ ४७८ ॥ म्हणौनि कर्मनिष्ठा वंद्यु । तो ज्ञानियांसि वेद्यु । तापसांचा आद्यु । तपोनाथु ॥ ४७९ ॥

< (2> < (2> < (2> < (2> < (2> < (2> < (2> < (2> < (2> < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2) < (2)

पैं जीवपरमात्मसंगमा । जयाचें येणें जाहलें मनोधर्मा । तो शरीरीचि परी महिमा । ऐशी पावे ॥ ४८० ॥ म्हणौनि याकारणें । तूंतें मी सदा म्हणें । योगी होईं अंत:करणें । पंडुकुमरा ॥ ४८१ ॥

(\$) \\ \{\partial \partial \pa

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना । श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ ४७॥

ॐ तत्सिदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ध्यानयोगो नाम षष्ठोध्यायः ॥६॥ अगा योगी जो म्हणिजे । तो देवांचा देवो जाणिजे । आणि सुख सर्वस्व माझें । चैतन्य तो ॥ ४८२ ॥ तेथ भजता भजन भजावें । हें भिक्तसाधन जें आघवें । तो मीचि जाहलों अनुभवें । अखंडित ॥ ४८३ ॥ मग तया आम्हां प्रीतीचें । स्वरूप बोलीं निर्वचे । ऐसें नव्हे गा तो साचें । सुभद्रापती ॥ ४८४ ॥ तया एकवटलिया प्रेमा । जरी पार्डे पाहिजे उपमा । तरी मी देह तो आत्मा । हेंचि होय ॥ ४८५ ॥ ऐसे भक्तचकोरचंद्रें । त्रिभुवनैकनरेंद्रें । बोलिलें गुणसमुद्रें । संजयो म्हणे ॥ ४८६ ॥ तथ आदिलापासूनि पार्था । ऐकिजे ऐसीचि आस्था । दुणावली हें यदुनाथा । भावों सरलें ॥ ४८७ ॥ कीं सावियाचि मनीं संतोषला । जे बोला आरिसा जोडला । तेणें हरिखें आतां उपलवला । निरूपील ॥ ४८८ ॥

तो प्रसंगु आहे पुढां । जेथ शांतु दिसेल उघडा । तो पालविजेल मुडा । प्रमेयबीजाचा ॥ ४८९ ॥ जें सात्त्विकाचेनि वडपें। गेलें आध्यात्मिक खरपें। सहजें निडारले वाफे । चतुरचित्ताचे ॥ ४९० ॥ वरी अवधानाचा वाफसा । लाधला सोनया ऐसा । म्हणौनि पेरावया धिंवसा । श्रीनिवृत्तीसी ॥ ४९१ ॥ ज्ञानदेव म्हणे मी चाडें । सद्गुरूंनीं केलें कोडें । माथां हात ठेविला तें फुडें । बीजिच वाइलें ॥ ४९२ ॥ म्हणौनि येणें मुखें जें जें निगे । तें संतांच्या हृदयीं साचिच लागे । हें असो सांगों श्रीरंगें । बोलिलें जें ॥ ४९३ ॥ परी तें मनाच्या कानीं ऐकावें । बोल बुद्धीच्या डोळां देखावें । हे सांटोवाटीं घ्यावें । चित्ताचिया ॥ ४९४ ॥ अवधानाचेनि हातें । नेयावें हृदयांआतौतें । हे रिझवितील आयणीतें । सज्जनांचिये ॥ ४९५ ॥ हे स्वहितातें निवविती । परिणामातें जीवविती । सुखाची वाहविती । लाखोली जीवां ॥ ४९६ ॥ आतां अर्जुनेंसीं श्रीमुकुंदें । नागर बोलिजेल विनोदें । तें वोंवियेचेनि प्रबंधें । सांगेन मी ॥ ४९७ ॥

इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां षष्ठोऽध्यायः ॥

< (2) > < (2) > < (2) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3)

॥ रामकृष्णहरि ॥

सेवाभावी संतचरणरज

बाळकृष्ण प्रकाश कदम

जय हरि सांस्कृतीक प्रतिष्ठान, सोलापूर
(इतर PDF ग्रंथासाठी संपर्क - ९७६५६५३८०५)
